Introduction

प्राक्कथन

आज हिन्दी का व्यापक प्रचार एवं प्रसार दिखाई पड़ता है । वह अनेक अहिन्दीभाषी कवि-लेखकों के भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सकी है । इसे आधुनिक परिस्थिति की देन नहीं कहा जा सकता । मध्यकाल में गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल आदि प्रदेशों में पाई जानेवाली हिन्दी की प्रमुख बोली व्रजभाषा की काव्य-परंपरा इस बात को प्रमाणित करती है कि मध्यकाल ही से वह देश के बहुत बड़े भाग की गौरवमय अभिव्यक्ति का माध्यम रही है । गुजरात के प्रसिद्ध कवि न्हानालाल का निम्नलिखित वक्तव्य इस तथ्य को प्रमाणित कर देता है -

" चन्दरासानी पराक्रमगाथाने कारणे त्यहारे राजदरबारोमांनी राजभाषा हिन्दी हती ; सूरदासजीनी सूरावट मधुरी पदावलिने कारणे कृष्णमंदिरोमांनी कीर्तनभाषा हिन्दी हती ; तुलसीकृत रामकथाना महाग्रंथने कारणे तीर्थतीर्थवासी जोगीओनी जोगभाषा हिन्दी हती ; भारतना प्रांतेप्रांते घूमती देशीपरदेशी सेनाओना सेनानीओनी सैन्यभाषा हिन्दी हती । विचारसागर समा समर्थ वेदान्त ग्रंथो त्यहारे हिन्दीमां लखाता, काव्यशास्त्रो त्यहारे हिन्दीमां रचाता, आपणो मध्ययुगनो ज्ञानभंडार हिन्दी भाषामां हतो । को महत्वाकांक्षीने भारतविख्यात महाग्रंथ गूंथवो होय तो त्यहारे हिन्दीमां गूंथता । "

(" कवीश्वर दलपतराम ", भाग ३, पृ० १०८-१०९)

गुजरात में व्रजभाषा-काव्य की बहुत लंबी परंपरा मिलती है । इस दिशा में कतिपय महत्त्वपूर्ण अध्ययन प्रकाश में आ चुके हैं जिन में डॉ० अम्बाशंकर नागर को सर्वप्रथम श्रेय दिया जाना चाहिये । तत्पश्चात् डॉ० नटवरलाल अम्बालाल व्यास का प्रकाशित शोधप्रबंध " गुजरात के कवियों की हिन्दी काव्य

साहित्य को देन " भी इस दिशा में किया गया महत्त्वपूर्ण कार्य है । ऐसे महत्त्वपूर्ण शोध-कार्यों के होते हुए भी कच्छ प्रदेश की व्रजभाषा-काव्य-परंपरा का अध्ययन एक दृष्टि से उपेक्षित ही रहा है । गुजरात की व्रजभाषा-काव्य-परंपरा के विकास में कच्छ का योगदान अपना निजी एवं ऐतिहासिक महत्त्व रखता है । महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय के भूतपूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ० कुँवरचन्द्र प्रकाशसिंह का " मुज(कच्छ) की व्रजभाषा पाठशाला" विषयक शोध-निबंध इस दिशा में किया गया प्रथम अध्ययन होने के रूप में महत्त्वपूर्ण है ।

कच्छ के महाराव लखपतिसिंह (सन् १७१० से १७६१ ई०)ने गुजरात की व्रजभाषा-काव्य-परंपरा को सुदृढ़ एवं शृंखलाबद्ध करने का अभूतपूर्व कार्य किया जिस का साहित्यिक के साथ साथ सांस्कृतिक महत्त्व भी है । उन्हों ने भुजनगर में व्रजभाषा और उस के काव्यशास्त्र के अध्ययन और अध्यापन के लिये सन् १७४९ ई० में " व्रजभाषा काव्यशाला" [१] की स्थापना की जो स्वातंत्र्य-पूर्वकाल अर्थात् सन् १९४७ ई० तक कार्य करती रही । इस प्रकार महाराव लखपतिसिंह ने अनेक अहिन्दी-भाषी प्रतिभासम्पन्न कवि-विद्यार्थियों को व्रजभाषा एवं उस के काव्यशास्त्र के दुर्लभ ग्रंथों के अध्ययन का सुअवसर प्रदान किया । इन दो सौ वर्षों के दीर्घकाल में इस " काव्यशाला" के सैंकड़ों कवि-विद्यार्थियों एवं उनके विद्वान् आचार्यों ने व्रजभाषा में काव्य-सर्जन किया। कच्छ की इस सुदीर्घ व्रजभाषा-काव्य-परंपरा ने गुजरात में व्रजभाषा के काव्य-सर्जन के लिये प्रेरक एवं पोषक वातावरण निर्मित किया । हिन्दी-प्रदेश के

oooooooo

१ डॉ० कुँवरचन्द्र प्रकाश सिंह ने " मुज(कच्छ) की व्रजभाषा पाठशाला" नाम दिया है परंतु वस्तुतः उसका वास्तविक नाम "महाराव श्री लखपत जी व्रजभाषा काव्यशाला, भुजनगर" ही था जो उपर्युक्त पुस्तिका के पृ०सं० ५० पर दिये गये कवि-विद्यार्थी श्री जसकरणदान अचलदान को प्राप्त प्रमाणपत्र से सिद्ध हो जाता है +

सुप्रसिद्ध रीतिकालीन आचार्य-कवियों के, गुजरात में दुर्लभ ऐसे बहुमूल्य काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का इस " काव्यशाला " में सुचारु रूप में व्यवस्थित अध्ययन कराया जाता था जिस से गुजराती के सुप्रसिद्ध कवि दलपतराम जैसे अनेक कवि लाभान्वित हुए । इस प्रकार गुजरात की व्रजभाषा-काव्य-परंपरा के विकास में कच्छ की इस " व्रजभाषा काव्यशाला" का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है जिस की स्थापना करने का गौरवमय कार्य महाराव लखपतिसिंह ने किया था ।

ऐसी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व की " काव्यशाला" की स्थापना करनेवाले महाराव लखपतिसिंह स्वयं भी एक समर्थ कवि थे । उन का साहित्यिक कृतित्व कच्छ की व्रजभाषा-काव्य-परंपरा में कालक्रम की दृष्टि से आरम्भिक होने के साथ साथ अपनी साहित्यिक गुणवत्ता के कारण भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । हिन्दी के विद्वानों द्वारा उन का सम्पूर्ण कृतित्व प्रायः उपेक्षित रहा है । सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री अगरचन्द जी नाहटा ने अपने विविध लेखों के अंतर्गत उन के समय के कुछ कवियों के विवरण के साथ साथ लखपतिसिंह का भी संक्षिप्त परिचय दिया है । अतः ऐसे महत्त्वपूर्ण कवि एवं भुज में काव्य-सर्जन की परिस्थितियों के निर्माता के सम्यक् अध्ययन का हिन्दी अध्ययन एवं शोध के क्षेत्र में अभाव ही है । डॉ० कुँवरचन्द प्रकाश सिंह ने " व्रजभाषा पाठशाला" नामक शोध-निबंध में अपेक्षाकृत विस्तृत सूचनाएँ दी हैं । किन्तु महाराव लखपतिसिंह के साहित्यिक कृतित्व के आलोचनात्मक अध्ययन तथा मूल्यांकन का अब तक कोई सम्यक् प्रयत्न ही नहीं हुआ है ।

प्रस्तुत शोधप्रबंध का शीर्षक " महाराव लखपतिसिंह "व्यक्तित्व और साहित्यिक कृतित्व" है । इस का मुख्य प्रतिपाद्य विवेच्य कवि की कृतियों का शोध, उनका आलोचनात्मक अध्ययन तथा उनके द्वारा प्रवर्तित

साहित्यिक प्रवृत्तियों का अनुशीलन है । ऐसा करने के साथ साथ, कवि कच्छ के शासक होने के कारण वहाँ की शासक-परंपरा का संक्षिप्त अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है और उस में उनका स्थान निर्दिष्ट किया गया है । कवि की जीवनी एवं व्यक्तित्व के अध्ययन को भी, उनके कृतित्व की प्रवृत्तियों के समुचित मूल्यांकन के लिये आवश्यक मानते हुए, प्रस्तुत शोध प्रबंध की सीमाओं में अंतर्भूत किया गया है । लेखक का विश्वास है कि इस से मुख्य प्रतिपाद्य का अध्ययन करने में सहायता ही मिली है ।

महाराव लखपतिसिंह कवि होने के उपरान्त उदार आश्रयदाता एवं काव्य मर्मज्ञ भी थे । उन्हों ने व्रजभाषा काव्यशाला की स्थापना करके काव्य-रचना के साथ-साथ अन्य साहित्यिक प्रवृत्तियों का भी संचालन किया था । अतएव उन साहित्यिक प्रवृत्तियों के परिचय को भी प्रस्तुत शोध प्रबंध में यथायोग्य स्थान दिया गया है जिसे मुख्य प्रतिपाद्य के अनुरूप ही समझा गया है ।

प्रस्तुत अध्ययन का यह उल्लेखनीय पक्ष है कि उस में कवि की समग्र रचनाओं के संपूर्ण पाठ को उपलब्ध करके उन का प्रथमबार आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है । ये सभी रचनाएँ अप्रकाशित, अल्पज्ञात एवं जर्जरित पत्रों के " चोपड़ों " के रूप में उपलब्ध होती हैं ।

प्रस्तुत अध्ययन की शोध-सामग्री के प्रधान तीन स्रोत हैं :

(एक) हस्तलिखित ग्रंथ, ताम्रपत्र और शिलालेख

(दो) प्रचलित जनश्रुतियाँ

(तीन) कुछ अप्राप्य महत्त्वपूर्ण इतिहास-ग्रंथ एवं पत्र-पत्रिकाएँ

कच्छ की हिन्दी हस्तलिखित सामग्री प्रस्तुत अध्ययन का आधारभूत स्रोत है । यह मूल्यवान् हस्तलिखित सामग्री गुजरात एवं राजस्थान

में इधर उधर बिखरी पड़ी है । यहाँ तक कि उस में से बहुत सी सामग्री आज नष्ट हो चुकी और हो रही भी है । ऐसी स्थिति में विवेच्य कवि की सभी रचनाओं, उन की जीवनी एवं तत्कालीन संस्कृति के अध्ययन से सम्बन्धित आधारभूत हस्तलिखित ग्रंथों एवं अन्य दुर्लभ सामग्री का एक ही स्थान पर सहज उपलब्ध होना नितान्त असंभव ही था । अतएव लेखक को कच्छ के राजकीय हस्तलिखित ग्रंथ-संग्रह, श्री हेमचन्द्राचार्यसूरि ज्ञानमंदिर, पाटण, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर(राजस्थान), महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागीय हस्तलिखित ग्रंथ-संग्रह, ऑरिएन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, रोयल एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई, " गुजराती " प्रिन्टींग प्रेस, बम्बई, फॉर्बस सोसायटी, बम्बई, गवर्नमेण्ट रिकार्ड ऑफिस, बड़ौदा आदि शोध-संस्थानों एवं प्रसिद्ध पुस्तकालयों में जा कर दुर्लभ शोध-सामग्री को प्राप्त करना पड़ा है । उपर्युक्त शोध-संस्थानों के अतिरिक्त प्रस्तुत विषय से सम्बन्धित अनेक प्रसिद्ध एवं विशेषज्ञ व्यक्तियों के सम्पर्क में आ कर लेखक ने उन से अप्राप्य ग्रंथों एवं पत्र-पत्रिकाओं, प्रचलित जनश्रुतियों एवं महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों को प्राप्त करने का यत्न किया है । उन महानुभावों में प्रमुख हैं : कच्छ के हिज़ हाईनेस महाराव मदनसिंह जी, कच्छ के वर्तमान राजकवि श्री शंभूदान ईश्वरदान अयाची, भुज(कच्छ) म्यूज़्यम के क्यूरेटर श्री मुकुन्दभाई रावल, मांडवी(कच्छ) के प्रसिद्ध डॉक्टर एवं गुजरात के सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ० स्व० जयंत खत्री, डॉ० म्नु०बी० पांधी, भुज(कच्छ) की "ब्रजभाषा काव्यशाला" के विद्यार्थी कवि श्री वीरमजी गोपालजी गढ़वी, भुज के एक भजनीक राजगोर कानजी पुरुषोत्तम जीकोभा, कच्छ के विदेशी इतिहास-लेखक एल० एफ० रशब्रूक विलियम्स, " कच्छनुं संस्कृति-दर्शन" के लेखक और रणजीतराम सुवर्णचन्द्र विजेता श्री रामसिंहजी राठौड़, " कच्छना संतो अने कवियो" के लेखक एवं प्रसिद्ध कच्छी लोक-साहित्यकार श्री दुलेराय काराणी, राजस्थानी साहित्य के विद्वान् श्री सौभागसिंह शेखावत, " राजस्थानी सब्द कोस " के संपादक श्री सीताराम

लाल्स, जोधपुर यूनिवर्सिटी के हिन्दी-प्राध्यापक डॉ० महावीरसिंह गहलोत, प्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ० महाराजकुमार रघुवीरसिंह जी, गुजरात के प्रसिद्ध विद्वान् एवं " गुजराती लोक-साहित्य माला " के संपादक डॉ० मंजुलाल मजुम्दार, प्रसिद्ध भाषाविद् के०का०शास्त्री, विजयराय के० वैद्य, प्रसिद्ध ज्योतिषी श्री हरिहरप्रसाद भट्ट तथा चित्र-संग्राहक श्री सोमाई नवाब इत्यादि ।

उपर्युक्त प्रयास के बावजूद भी लेखक की अपनी सीमाएँ रही हैं । उसे जो भी सूचनाएँ मिलीं, तदनुसार संस्थानों, सम्बन्धित जनों तथा चारणों आदि से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास किया फिर भी सम्भव है कि कुछ सामग्री छूट गई हो । अपेक्षित किन्तु अनुपलब्ध सामग्री के लिए लेखक की विवशता सुधीजनों की दृष्टि में क्षम्य है, हाँ, वह लेखक को खटकती अवश्य है, जिस का कि निर्देश प्रसंगानुसार किया गया है । जहाँ तक अध्ययनगत निष्ठा का प्रश्न है यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि उसने इस दिशा में यथाशक्ति प्रयास किया है और सम्भाव्य अभावों या स्खलनों के लिए विद्वज्जनों के प्रति वह नम्रभाव से क्षमाप्रार्थी भी है ।

विवेचनगत सुविधा के विचार से प्रस्तुत शोधप्रबंध को नौ अध्यायों में विभाजित किया गया है जिन का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

प्रथम अध्याय में कच्छ की सामान्य पृष्ठभूमि का परिचय देते हुए पूर्ववर्ती शासक-परंपरा में महाराव लखपतिसिंह का स्थान निर्दिष्ट किया गया है । उनके समय की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का संक्षिप्त अनुशीलन किया गया है क्यों कि महाराव की जीवनी, व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्यक् मूल्यांकन के लिये युगगत भूमिका का स्पष्टीकरण लेखक को आवश्यक प्रतीत हुआ।

इस अध्याय की अध्ययन-सामग्री के लिये लेखक ने प्रमुखतया कच्छ के स्थानीय एवं विदेशी दुर्लभ इतिहास-ग्रंथों का आधार लिया है । तत्कालीन सांस्कृतिक वातावरण के विशिष्ट अध्ययन के लिये अप्रकाशित हस्तलिखित सामग्री तथा राजकीय ताम्रपत्र एवं शिलालेखादि की सहायता ली है । इस प्रकार की सामग्री के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष लेखक के निजी हैं । अध्याय के अंत में इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि महाराव लखपतिसिंह ने तत्कालीन सांस्कृतिक एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि के नवनिर्माण में क्या योग दिया । यह निष्कर्ष मौलिक होने के साथ साथ आगामी अध्यायों का दिशासूचन भी करता है ।

द्वितीय अध्याय, महाराव लखपतिसिंह की जीवनी और व्यक्तित्व से सम्बन्धित है । जीवनी विषयक अध्ययन को कवि के जन्म, बाल्यकाल, पारिवारिक, राजकीय, साहित्यिक जीवन और मृत्यु के उप-शीर्षकों द्वारा प्रस्तुत किया गया है । कवि के व्यक्तित्व को उन के प्रमुख चारित्रिक लक्षणों, स्वभावादि के द्वारा स्पष्ट किया गया है । प्रस्तुत अध्याय में लखपतिसिंह के साहित्यिक जीवन और कवि व्यक्तित्व का अध्ययन प्रस्तुत शोध-कार्य से सीधा सम्बन्धित होने से, विस्तारपूर्वक किया गया है । कवि के साहित्यिक संस्कार, अध्ययन, सर्जनकाल को विशेष प्रकाशित करते हुए उन के सर्जनकाल के विकास का प्रारंभिक, मध्य और प्रौढ़काल के अंतर्गत परीक्षण किया गया है । साथ ही कवि द्वारा प्रेरित और संचालित व्यापक साहित्यिक प्रवृत्तियों का भी परिचय दिया गया है ।

इस अध्याय की अध्ययन सामग्री दुर्लभ हस्तलिखित ग्रंथों, ताम्रपत्र, शिलालेखों, अप्राप्य इतिहास-ग्रंथों एवं पत्र-पत्रिकाओं पर आधारित है । साथ ही कवि कच्छ के लोकप्रिय शासक होने से उन से सम्बन्धित लोकप्रचलित जनश्रुतियों को भी लेखक ने प्रस्तुत अध्ययन में आधार बनाया है ।

परंतु जनश्रुतियों से प्राप्त तथ्य संभव है अतिरंजनापूर्ण भी हों इसलिये सावधानी पूर्वक समस्त सामग्री का अध्ययन करके लेखक ने निजी निष्कर्ष निकाले हैं । प्रस्तुत अध्याय के महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यहाँ उल्लेखनीय हैं :

(१) प्रथम तो यह कि विवेच्य कवि कच्छ के प्रसिद्ध शासक होते हुए भी कच्छ से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण स्थानीय एवं विदेशी इतिहास-ग्रन्थों में भी उनके जीवन-काल के विषय में कोई मतैक्य नहीं है । अतएव लेखक को अपने विवेच्य कवि के जीवनकाल का निर्धारण अनेक हस्तलिखित सामग्री के आधार पर करना पड़ा है । जो कच्छ के इतिहास-लेखन की बहुत बड़ी क्षतिपूर्ति करता है ।

(२) इसी प्रकार कवि के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में भी यह भ्रान्त धारणा प्रचलित रही है कि वे अत्यधिक विलासी, निष्फल शासनकर्ता और स्थूल मनोरंजन के लिये कवि, संगीतकारों और नर्तकियों के पीछे फिजूल खर्च करने वाले थे । अनेक प्रमाणों एवं उनके आश्रित कवियों की रचनाओं के आधार पर उनके विलासी एवं मुक्त हस्त व्यक्तित्व के मूल में छिपे सौन्दर्य और साहित्य-कला-प्रेम के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व को उद्घाटित किया गया है ।

(३) तीसरे अपने राज्य के अर्थतंत्र को सुविकसित एवं व्यवस्थित करने तथा उस को अपनी प्रिय प्रवृत्तियों के साथ सुनियोजित करने की विविध योजनाओं में उन की बौद्धिकक्षमता, राजकीय सफलता और लोकाभिमुखता का इस शोध प्रबंध में सर्वप्रथम प्रामाणिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत महाराव लखपतिसिंह की कृतियाँ

का प्रामाणिक परिचय दिया गया है । उपलब्ध कृतियों की हस्तलिखित प्रतियाँ कवि के निकटतम समय की होने से अधिक प्रामाणिक एवं संपूर्ण हैं । प्रस्तुत अध्याय के उल्लेखनीय पक्ष संक्षेप में इस प्रकार हैं :

(एक) लखपतिसिंह की कृतियों में प्रमुखतया " सुरतरंगिनी " के कर्तृत्व के सम्बन्ध में, आदरणीय डॉ० कुँवरचंद्र प्रकाश सिंह द्वारा उठायी गयी समस्या का उस कृति के अंतःसाक्ष्य और अन्य प्रमाणों के आधार पर यहाँ उपयुक्त हल प्रस्तुत किया गया है ।

(दो) " लखपत-शृंगार" नाम से प्रसिद्ध रचना का मूल और कवि द्वारा अभिप्रेत नाम " रसतरंग" था, ऐसा सिद्ध करते हुए उस ग्रंथ के कुछ महत्त्वपूर्ण पृष्ठों की फोटो-कॉपियों को प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किया गया है ।

(तीन) लखपतिसिंह की अपूर्ण मानी जानेवाली एक कृति " सदाशिव-ब्याह" की संपूर्ण प्रतिलिपि को यहाँ सर्वप्रथम अध्ययन का आधार बनाया गया है ।

(चार) लखपतिसिंह के कुछ फुटकल अप्रसिद्ध सवैयों का संपूर्ण पाठ दे कर, यहाँ उन का सर्वप्रथम परिचय दिया जा रहा है । यह लेखक का पूर्णतया अपना निजी प्रयास है ।

निष्कर्ष रूप में अध्याय के अंत में विवेच्य कवि की रचनाओं को (एक) शास्त्रीय-ग्रन्थ और (दो) काव्य-ग्रन्थ तथा (तीन) फुटकल रचनाओं में विभाजित किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय में लखपतिसिंह के शास्त्रीय ग्रंथों की विषयवस्तु का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। "सुरतरंगिनी " एक संगीतशास्त्र विषयक

रचना है । उसके आधारग्रंथ के रूप में कवि ने स्वयं संस्कृत के प्रसिद्ध संगीतशास्त्री पंडित शार्ङ्गदेव के " संगीतरत्नाकर" का उल्लेख किया है । अतएव इस ग्रंथ के वर्ण्य-विषय से " सुरतरंगिनी " की तुलना की गई है । इस तुलनात्मक अध्ययन से निम्नलिखित दो महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले गये हैं जो इस रचना के मूल्यांकन में उपयोगी सिद्ध हुए हैं :

(एक) कवि ने अपने आधार-ग्रंथ का अपूर्ण अनुकरण किया है, और

(दो) समग्र रचना को दो अंशों में विभाजित किया जा सकता है - शास्त्रीय और काव्यात्मक अंश । शास्त्रीय अंश के निरूपण में कवि मौलिक नहीं हैं और काव्यात्मक अंशों में कवि की सरस शृंगारी काव्यप्रवृत्ति का परिचय मिलता है ।

" रसतरंग" लखपतिसिंह का दूसरा शास्त्रीय ग्रंथ है । इस में कवि ने नायक-नायिका-भेद के विषय का निरूपण किया है । इस ग्रंथ की रचना में सुंदरदास के " सुंदरशृंगार "नामक नायिकाभेद विषयक सुप्रसिद्ध ग्रंथ का आधार लेने का उल्लेख कवि ने किया है । दोनों के वर्ण्य-विषय की तुलना की गई है । इस से यह निष्कर्ष निकलता है कि " रसतरंग" में कवि का नायिका-भेद विषयक विवेचन मौलिक नहीं है । परंतु उस की काव्यात्मकता निःसन्देह उच्च कोटि की है ।

महाराव लखपतिसिंह के शास्त्रीय ग्रंथों का यह तुलनात्मक अध्ययन लेखक का सर्वथा मौलिक प्रयास है ।

पंचम अध्याय लखपतिसिंह के खण्डकाव्य के विवेचन से सम्बन्धित है । यह उल्लेखनीय है कि लखपतिसिंह ने अपने अवस्थितिकाल — रीतिकाल की प्रधान प्रवृत्ति शृंगारिकता को अपनी भी प्रधान काव्य-प्रवृत्ति के रूप में अपनाया है । रीतिकाव्य के प्रचलित काव्यरूप मुक्तक के साथ साथ उन्होंने प्रबंधकाव्य — विशेषतया खण्डकाव्यों को भी अपनी प्रधान काव्य-प्रवृत्ति का

माध्यम बनाया है । " रीतिकाल के प्रमुख प्रबंधकाव्य " के शोधकर्त्ता डॉ० इन्द्रपालसिंह "इन्द्र" ने महाराव लखपतिसिंह के एक खण्डकाव्य "सदाशिव-ब्याह" का ही नामोल्लेख मात्र किया है, यहाँ उन के " सदाशिव-व्याह" और " लखपति भक्ति विलास" दोनों खण्डकाव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है । यह लेखक का मौलिक अध्ययन है । दोनों रचनाओं की कथावस्तु, प्रबंधसौष्ठव, और चरित्र-सृष्टि का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस में लेखक ने अपने निर्देशक डॉ० मदनगोपाल जी गुप्त द्वारा लिखित " श्रवणाख्यान" की भूमिका की विवेचनशैली को अपनाया है ।

इस अध्याय के निष्कर्ष संक्षेप में इस प्रकार हैं :

(एक) कवि प्रबन्ध-काव्योचित वस्तुसंगठन में पूर्णतया सफल नहीं हो पाये हैं । " लखपति भक्ति विलास " में कवि ने पौराणिक कथा को मार्मिक उपदेशात्मक शैली में प्रस्तुत किया है जिस में कवि कथासंगठन में उतने सफल नहीं हुए जितने प्रभावकारी, मार्मिक तेजस्वी उपदेशवाणी की अभिव्यक्ति में ।

(दो) " सदाशिव ब्याह " अपेक्षाकृत उन की अधिक सफल रचना है । इस की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वह गुजरात में प्रचलित लोककथा का साहित्यिक रूप है । कवि लखपतिसिंह की लोकाभिमुख अभिरुचि का यह खण्डकाव्य सुन्दर प्रमाण है ।

(तीन) कवि ने मुक्तकों की भाँति खण्डकाव्यों में भी शृंगारिकता को ही प्रधानता दी है परंतु " लखपति भक्ति विलास " में भक्ति एवं वैराग्य विषयक अभिव्यक्तियाँ भी मार्मिक एवं काव्यात्मक बन पड़ी हैं ।

षष्ठ अध्याय में कवि के अवस्थितिकाल – रीतिकाल की प्रमुख

काव्य-प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में उन के काव्य का प्रवृत्तिगत परीक्षण किया गया है । रीतिकाव्य की प्रधान दो प्रवृत्तियाँ - शृंगारिकता और आचार्यत्व में से शृंगारिकता लखपतिसिंह के काव्य की व्यापक प्रवृत्ति है । कवि की शृंगार-भावना को संयोग-शृंगार तथा वियोग-शृंगार के दो शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित करते हुए क्रमशः प्रत्येक का शास्त्रीय विवेचन किया गया है । संयोग-शृंगार के अंतर्गत कवि की सौन्दर्य-चेतना, उनके द्वारा किया गया रूप चित्रण, रतिक्रीड़ा, उद्दीपन-विभाव तथा नायक-नायिकादि के परिहास एवं विनोद के वर्णनों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इसी प्रकार वियोग-शृंगार के अंतर्गत कवि द्वारा किये गये पूर्वराग, मान, प्रवास के वियोग-वर्णनों का विवेचन किया गया है । कवि की शृंगार-भावना का समुचित मूल्यांकन करने के लिये उसकी रीतिकाल के प्रसिद्ध शृंगारी कवियों से तुलना भी की गई है ।

प्रस्तुत अध्ययन का निष्कर्ष यह निकलता है कि लखपतिसिंह की शृंगारिकता पर रीतिकालीन सौन्दर्य-दृष्टि एवं काव्यशास्त्रीय मानदंडों का पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता है । इस के साथ यह भी उल्लेखनीय है कि शास्त्रीय के साथ साथ उन्मुक्त शृंगार-वर्णन में भी कवि सफल सिद्ध हुआ है ।

लखपतिसिंह की द्वितीय काव्य-प्रवृत्ति आचार्यत्व की है । परंतु यह उनकी प्रमुख प्रवृत्ति शृंगारिकता द्वारा प्रेरित एवं पोषित होने से अत्यंत गौण प्रवृत्ति मानी जायेगी । अपने दो शास्त्रीय ग्रंथों में, जैसा कि दृष्टिगत किया गया है, वे मौलिक शास्त्र-निरूपण नहीं कर पाये हैं । अतएव रीतिकालीन आचार्य कवियों की इस प्रवृत्ति की दृष्टि से लखपतिसिंह का शास्त्रविषयक कृतित्व निर्बल ही माना जाएगा ।

प्रस्तुत अध्याय का निष्कर्ष यह निकलता है कि शृंगारिकता महाराव लखपतिसिंह की प्रधान काव्य-प्रवृत्ति है । रीतिकाव्य के सुधी

विवेचक डॉ० नगेन्द्र के प्रकाशित शोध प्रबंध " देव और उनकी कविता " की विवेचनशैली को लेखक ने उपर्युक्त विवेच्य के लिये अपनाया है । विवेच्य कवि के साहित्यिक कृतित्व का आलोचनात्मक अध्ययन इस प्रकार का सर्वप्रथम प्रयत्न होने से, लेखक का सर्वथा मौलिक प्रयास है ।

सप्तम अध्याय " लक्षपतिसिंह की काव्य-कला " से सम्बन्धित है । इस अध्याय में भी डॉ० नगेन्द्र के उपर्युक्त प्रसिद्ध प्रबंध की विवेचन-शैली का अनुसरण करते हुए लक्षपतिसिंह की काव्य-कला का अध्ययन चित्रात्मकता, अप्रस्तुत-विधान, भाषा और छंद के शीर्षकों के अंतर्गत किया गया है ।

काव्य के " प्रत्यक्षीकरण पक्ष " के लिये कवि ने जिस चित्रात्मकता की योजना की है, उस के मुख्य उदाहरणों के विवेचन से यह सिद्ध होता है कि उन्हों ने इस कला का सफल निर्वाह किया है । अप्रस्तुत विधान के अंतर्गत कवि द्वारा प्रयुक्त रूप-साम्य, धर्म-साम्य, प्रभाव-साम्य, संभावना-मूलक अप्रस्तुतों एवं उदाहरण, दृष्टांत आदि अलंकारों का विवेचन किया गया है । उनका अप्रस्तुत-विधान वर्ण्य के रूप, रंग, भावानुभूति को मूर्त करने में सफल हुआ है । कवि अप्रस्तुत-विधान में रूढ़िग्रस्त नहीं दिखाई पड़ता । उसने अपने व्यापक अनुभवजगत् एवं लोकजीवन के विविध क्षेत्रों से भी अप्रस्तुतों का चयन करके उनका काव्योपकारक एवं कलात्मक विधान किया है । कवि के अलंकार-निरूपण के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि वे रीतिकालीन कवियों की भाँति शब्द-चमत्कार की सृष्टि से प्रायः दूर रहे हैं ।

भाषा विषयक अध्ययन के अंतर्गत कवि का शब्दभंडार, भाषा-सौष्ठव आदि का वर्ण्य-विषय की अनुरूपता की दृष्टि से अध्ययन किया गया है । भाषा-सम्बन्धी अध्ययन का यह निष्कर्ष निकलता है कि अहिन्दीभाषी होते हुए भी कवि ने व्रजभाषा का प्रायः शुद्ध, समर्थ एवं सफल प्रयोग किया

है । कहीं-कहीं पर गुजराती भाषा का प्रभाव भी शब्द-योजना में दिखाई पड़ता है । विषयानुरूप संस्कृत शब्दावली तथा पात्रानुकूल उक्तियाँ, मुहावरों एवं कहावतों के प्रयोग कवि की काव्य-कला के अच्छे उदाहरण हैं ।

कवि का छंद-विधान भी सफल एवं भावानुरूप है । उनके छंद-प्रयोग का यह उल्लेखनीय पक्ष है कि उन्होंने मात्रिक एवं वर्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का सम्यक् निर्वाह किया है ।

प्रस्तुत अध्याय में किये गये अनुशीलन द्वारा लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि काव्य-कला की दृष्टि से लखपतिसिंह की रचनाएँ रीति-युगीन प्रवृत्तियों के सफल कृतित्व का साक्ष्य उपस्थित करती हैं ।

अष्टम अध्याय में महाराव लखपतिसिंह की अन्य साहित्यिक प्रवृत्तियों का परिचय प्रस्तुत किया है । उन की अन्य दो साहित्यिक प्रवृत्तियाँ हैं : एक, उनके आश्रय एवं प्रोत्साहन से प्रेरित उनके दरबार के कवियों की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ और दूसरी, उन के द्वारा स्थापित "व्रज-भाषा काव्यशाला " की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ । लखपत-दरबार के कवियों में प्रमुखतया चारणकवि हमीरदान रत्नू, आचार्य कवि कनककुशल और कुँवरकुशल की साहित्यिक प्रवृत्तियों का परिचय प्रस्तुत किया गया है । " व्रजभाषा काव्यशाला " के वृत्तांत को लखपतिसिंह की द्वितीय प्रवृत्ति के अंतर्गत गिनाते हुए, उस की सामान्य व्यवस्था, पाठ्यक्रम, परीक्षाविधि, उस में पढ़े प्रसिद्ध कवि-विद्यार्थियों की परंपरा आदि का सामान्य उल्लेख किया गया है । इस अध्याय में वर्णित साहित्यिक प्रवृत्तियाँ महाराव लखपतिसिंह के साहित्य एवं संस्कृति के प्रेमी, काव्यमर्मज्ञ, उदार आश्रयदाता के व्यक्तित्व को प्रकाशित करती हैं ।

प्रस्तुत अध्याय के लिये लेखक ने आदरणीय डॉ० कुँवरचन्द्र प्रकाशसिंह के शोध-निबन्ध " भुज(कच्छ) की व्रजभाषा पाठशाला" का प्रमुख

आधार लिया है किन्तु निष्कर्ष उसके अपने निजी हैं ।

नवम अध्याय उपसंहारात्मक है । उसके अंतर्गत शोधप्रबंध के विवेच्य विषय का समग्र मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है । पूर्ववर्ती अध्यायों से प्राप्त निष्कर्षों को दृष्टिगत करते हुए कवि लखपतिसिंह का हिन्दी साहित्य में स्थान निर्दिष्ट किया गया है ।

प्रस्तुत शोध-कार्य का आरंभ महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय के भूतपूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष आदरणीय डॉ० कुँवरचन्द्र प्रकाशसिंह के निर्देशन में हुआ था । परंतु मुझे अपने भावी कार्य का कोई निश्चित दिशा-बोध हो इस से पूर्व तो उन्हों ने विश्वविद्यालय के सेवाकार्य से अवकाश ग्रहण किया । तदनन्तर सद्भाग्य से वर्तमान हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ० मदनगोपाल जी गुप्त ने अत्यंत सहानुभूति एवं स्नेहपूर्वक मुझे अपने मार्गदर्शन में यह कार्य करने की अनुमति देने की महती कृपा की । प्रस्तुत शोध प्रबंध उन्हीं के सुयोग्य निर्देशन का परिणाम है । डॉ० साहब के इस उपकार को मैं आभार के बाह्याडम्बर भरे शब्दों से भुनठलाना नहीं चाहता ।

हिन्दी-रीति-साहित्य के प्रसिद्ध विवेचक आदरणीय डॉ० भगीरथ जी मिश्र ने अपने मूल्यवान् सुझावों से मुझे उपकृत किया है । प्रसिद्ध इतिहासविद् आदरणीय डॉ० महाराजकुमार रघुवीरसिंह जी का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्हों ने कच्छ के इतिहास सम्बन्धी अध्याय को देख जाने की कृपा की । " कच्छनुं संस्कृति-दर्शन " के लेखक श्री रामसिंह जी राठौड़ ने प्रथम एवं द्वितीय अध्याय को पढ़ कर कुछ विशिष्ट सूचनाएँ दे कर मुझे उपकृत किया है ।

कच्छ राज्य के हिंदी हस्तलिखित ग्रंथ-संग्रह से महाराव लखपतिसिंह की रचनाओं का उपयोग करने की उदार अनुमति देने के लिये

मैं कच्छ के हिज़ हाईनेस महाराव श्री मदनसिंह जी का हृदय से आभारी हूँ । महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग तथा राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (राजस्थान) के हस्तलिखित ग्रंथ-संग्रहों से भी लेखक को अपने विवेच्य कवि की मूल्यवान् कृतियाँ देखने को मिली हैं । तदर्थ समुचित व्यवस्था और सुविधा प्रदान करने के लिये उन के अधिकारियों का भी वह हृदय से आभारी है । भुज की चावड़ी-पुलिस चौकी के ताम्रपत्र और "लखपत-छतरडी " के शिलालेख का उपयोग करने की अनुमति देने के लिये लेखक गवर्नमेन्ट ऑफ़ गुजरात के डिरेक्टर ऑफ़ आर्क्यालॉजी का भी आभारी है । लगभग सवा दो वर्षों तक मुझे रिसर्च स्कॉलरशिप तथा अन्य आर्थिक सहायताएँ देने के कारण यूनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमिशन तथा महाराजा सयाजीराव विश्व-विद्यालय के संबंधित अधिकारियों के प्रति कृतज्ञताज्ञापन करना मेरा पुनित कर्तव्य है । प्रस्तुत शोधकार्य के लिये अनेक विद्वान् लेखकों एवं विशेषज्ञों का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोग पाने का सद्भाग्य लेखक को समय समय पर मिलता रहा है । उन सभी महानुभावों का वह सच्चे अर्थों में आभारी है ।

प्रस्तुत शोधकार्य के प्रारंभ में जिन की उदार सहायताओं, मूल्यवान् सूचनों एवं स्नेहपूर्ण प्रेरणाओं से लेखक बराबर लाभान्वित और प्रेरित रहा ऐसे मेरे आदरणीय गुरुजनों डॉ० कुँवरचन्द्र प्रकाशसिंह, डॉ० अम्बाशंकर नागर, स्वर्गीय डॉ० भारतेन्दु सिन्हा के प्रति वह श्रद्धावनत है । बड़ौदा विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रत्येक प्राध्यापक की सद्भावना के लिये भी लेखक उन के प्रति आभार प्रकट करता है । मित्रवर्य डॉ० प्रताप-नारायण मेहता जी का वह सविशेष आभारी है जिन की स्नेहसम्वलित एवं व्यावहारिक बातों का उसे उचित सम्बल प्राप्त होता रहा । मेरे प्रिय विद्यार्थी श्री मदनगोपाल दवे, बी०ए०, का मैं इन पंक्तियों में नाम प्रकट करने का लोभ-संवरण कैसे कर सकता हूँ, जिस ने, पता नहीं क्यों, मेरे इस

कार्य में सहयोग देने की हर समय और सच्चे हृदय से तत्परता दिखाई है ।

गुजरात जैसे अहिन्दी प्रदेश में हिन्दी-टंकण-कार्य के लिये लेखक को जो कठिनाइयाँ पड़ी हैं उन का वर्णन करना तो यहाँ ठीक नहीं होगा । अहिन्दी भाषी होते हुए भी प्रस्तुत शोध-प्रबंध के टंकण-कार्य को अपनी पूरी योग्यता के साथ निभा लेने के लिये मैं श्री निलाप का सविशेष आभारी हूँ । पूरी सावधानी रखने पर भी व्यक्तिगत एवं यांत्रिक सीमाओं के कारण टंकण की भूलों का रह जाना असंभव नहीं है, तदर्थ मैं विद्वानों का क्षमाप्रार्थी हूँ । *

अंत में, प्रस्तुत शोधकार्य की समाप्ति मेरे साथ साथ जिस को समान सुखकर प्रतीत हो रही है, उस जीवनसाथी को, अनेक संकटों और असुविधाओं में, मुझ से भी अधिक हिंमत एवं धैर्य प्रकट करने के लिये बधाई देता हूँ ।

विनीत

(कांतिलाल शाह)

भरुच : दीपावली, २०२८.

दिनांक : १८. १०. १९७१.

०००

* टंकण-यंत्र की कुछ खटकनेवाली त्रुटियों का यहाँ निर्देश करना अनुचित नहीं होगा, जिन्हें स्थान स्थान पर संशोधित किया गया है। अर्द्ध-चंद्राकार, नुक्ता का चिह्न, 'र' के बदले 'ग' जिन में प्रमुख हैं।